अनन्तर/जनसत्ता/१९ नवंबर, २००६

यथार्थ का विद्रूप

ओम थानवी

अर्पिता सिंह के तीन वर्ष के नए काम की प्रदर्शनी (वढेरा कला दीर्घा, दिल्ली) में से निकल कर आना भारतीय सभ्यता की सदियों पर जमी आधुनिकता की धूल से सन कर आना है।

अपने इस संकलन को अर्पिता जी ने 'पिक्चर पोस्टकार्ड' नाम दिया है। वाजिब तौर पर उनकी ये तमाम कृतियां नए भारत की नानाविध झिलमिल छवियों- समाज-राजनीति से लेकर शिक्षा और न्याय व्यवस्था तक- की दारुण रैखिक इबारतें हैं। ये रेखाएं और उनसे रूप पातीं आकृतियां हमारे वर्तमान की विसंगतियों का कलात्मक लेखा-जोखा हैं। वे यथार्थ का विद्रूप हैं; इन्हें दिया गया 'पिक्चर पोस्टकार्ड' नाम भी अपने में आधुनिक संस्कृति का एक विद्रूप रचता है। इस नामकरण से यह न समझें कि यह छोटी-छोटी तस्वीरों का संकलन है। प्रदर्शनी में छोटी-बड़ी कई कृतियां हैं। इनमें एक कलाकृति तो अस्सी गुणा एक सौ आठ इंच की है।

अर्पिता सिंह हमारे समय के सबसे अहम कलाकारों में हैं। लेकिन वे समय से सटकर नहीं चलती हैं। न वे वक्त के साथ भागती हैं, न वक्त उनके काम में दौड़ता दिखाई देता है। बल्कि उनकी छवियों में वह कुछ ठिठक जाता है। इस नाते भी उनका काम बड़ा है।

अर्पिता की रेखाओं की रंगत कई सतहों पर सीधी हमारी परंपरा से जा मिलती है। कभी लघुचित्रों से, कभी शेखावटी की लोककला से तो कभी अजंता के भित्तिचित्रों से। रेखाओं के कुछ जाने कुछ भूले-बिसरे रूपों के बीच अर्पिता नए रूपक रचती हैं। उनके रंग, चरित्र और संयोजन अपने स्वरूप में घोर आधुनिक हैं। वे बिल्कुल नए हैं, फिर भी जाने-पहचाने लगते हैं। वे जटिल हैं; बिखरते हैं, आपस में उलझते हैं। पर सुहाने लगते हैं। वे अर्पिता के रूपक हैं। मगर अपने लगते हैं।

अर्पिता सिंह में दृष्टि और कल्पना की ही नहीं, काम करने की भी अनूठी ऊर्जा है। तीन वर्ष में उन्होंने रेखांकन, कागज पर जलरंगों और किरमिच पर तैलरंगों में कितना काम किया है यह देखकर हैरानी होती है। यह काम विविध रूप में है, इसलिए इकहरा नहीं है। उसमें ताजगी है, दुहराव नहीं है।

काम में सबसे ज्यादा जो बात अभिभूत करती है वह है कलाकार की सामाजिक चेतना। एक धारा की तरह वह अर्पिता जी की कृतियों में बहती है। आप उसकी लहरें छू सकते हैं। उसमें उतर सकते हैं, तैर सकते हैं। पार उतर जा सकते हैं। लेकिन वह आपको डूबने नहीं देती। हालांकि उसमें बहुत गहराई है। किसी भावुक मोहपाश में जकड़ने की बजाय ये कृतियां आपको तटस्थता देती हैं। अर्पिता के ये चित्र हमारे वक्त के निरे रैखिक दस्तावेज नहीं हैं; वे वक्त पर मानीखेज राजनीतिक टिप्पणियां हैं: सहज और तीक्ष्ण। मगर बगैर किसी शोर या बड़बोलेपन के।

दिलचस्प बात है कि उनकी बहुत सारी कृतियों में हिंदी-अंग्रेजी के अक्षर आते हैं, हवा में उड़ते हुए, पृष्ठभूमि में बिखरे हुए, अधूरी अर्थहीन इबारतों को गढ़ते-न गढ़ते हुए। सभ्यता के सबसे साक्षर दौर में जैसे हमें शब्दों की अर्थहीनता और सीमा का अहसास कराते हुए। और यह सब बेतरतीब, पर सशक्त रेखाओं और आम रंगों के जरिए! एक कृति 'काले कोट में आदमी' साफ-साफ शिक्षा की विसंगति पर चोट करती है। आधुनिक दौर में अप्रासंगिक ठहराए जाते, मगर हर गांव-कस्बे में तैनात 'मास्टरजी'। कृति के ठीक बीच में अपनी उजली धोती को मानो समूची शिक्षा पद्धति के बोझ की मानिंद संभालते हुए। अब उन्हें एक रंगबिरंगी कुर्सी नसीब है। जूते-जुराबें खोलकर, घुटने फैलाकर, बच्चों की तरफ पीठ कर, शायद चुटकी में नसवार थामे हुए वे आपसे मुखातिब हैं। आपको लगता है आप ही आपसे मुखातिब हैं, पूछते हुए कि आखिर व्यवस्था में खोट कहां रह गई? पीछे पीले पड़े करुण चेहरों में दस बच्चे हैं। उनकी तरफ से भी ढेर सवाल आपके मन में, आपके अपने लिए, उठ सकते हैं।

आयोजन में सबसे पहले एक अपेक्षया छोटी कृति प्रदर्शित है: 'लेसर मिथ' (अल्प गल्प)। स्त्री-शक्ति की पुराण-कथाएं यहां जैसे भरभरा कर ढह जाती हैं। हाथ से बने कागज पर जलरंगों से बनी कृति के चारों तरफ फूल और नीचे एक गुलदस्ता अलंकृत है। फूलों के कुम्हलाते रंग, काली पड़ती हरी पत्तियां। पूरी कृति जैसे किसी शहर के उजड़े नक्शे पर फैली हो। आधुनिक सभ्यता की पहचान दो मोटर गाड़ियां। एक बड़ी है, हमारे ज्यादा करीब है। भीतर हैं दो अधनंगे मुसाफिर। बाहर दो सफेदपोश उद्यमी, हाथ में हाथ लिए। ऊपर बंदूक तले औरत को दबोचे एक मवाली। चारों तरफ शेर, मगर सहमे हुए या बाहर की तरफ मुंह फेरे हुए। इनमें किसी एक शेर की पीठ पर बंदूकधारी निर्वसन स्त्री। टूटे-फूटे शब्दों के बीच पढ़ी जा सकने वाली दो इबारतें: बीचोबीच बड़े अक्षरों में 'फन फॉर एवरीवन' और सबसे ऊपर 'मौसम की भविष्यवाणी'। मानो इस वक्त में हिंसा भी कोई भविष्यफल हो।

कृति में अनेक आकृतियों के बावजूद उनका संयोजन इतना सजीव और तारतम्य में है कि हमारा ध्यान सबके जोड़ में जाता है, रेखांकनों में बंटते हुए नहीं।

हिंसा के दौर की छाया कुछ दूसरी कृतियों में भी है, लेकिन वहां भी बहुत सहज और गौण रूप में। खास बात यह है कि कलाकार का मूल्य-बोध हमें कहीं भी उपदेश या फौरी प्रतिक्रिया नहीं लगता, वह कृति में सहज रूप से गुंथी हुई कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है। ऐसी चार कृतियां अलग से लक्ष्य होती हैं। त्रिपट कृति 'वाटेवर इज हियर...' (यदिहास्ति तदन्यत्र ...) बहुत देर तक ध्यान खींचती है। शीर्षक महाभारत के बारे में उस प्रसिद्ध श्लोक से है जिसमें कहा गया है कि ''जो यहां है, जहां में है; जो यहां नहीं, कहीं नहीं।'' किरमिच पर तैलरंगों में यह सघन संयोजन 'महाभारत' के उस यथार्थ को अर्पिता सिंह के परिचित नजरिए से देखता है। केंद्र में धृतराष्ट्र हैं। फौजी दूरबीन पकड़े हुए युद्ध की दास्तान बयान करता संजय। इर्द-गिर्द धवल वस्त्रों में कुछ भिक्षु। इनके साथ युद्ध के उपादानों का हुजूम। और हाशिये पर अरब सागर में नागरिकों की डुबकन!

दूसरी एक कृति 'द ट्री' (दरख्त) तो साक्षात लाठियों-बंदूकों का पेड़ है। अनार की शक्ल में उस पर हथगोले टंगे हैं। पेड़ की जड़ें खोखली हैं। दो नग्न मानव-आकृतियों के पांव ऐसे हैं जैसे जमीन में पेड़ की जड़ों से एकमेव हों। एक भद्रपुरुष 'पेड़' के साये में सहमा और झुका खड़ा है। कृति में बहुत थोड़े रंगों का इस्तेमाल है। (शाखाओं में) काले रंग का इस्तेमाल असरदार मगर नितांत गैर-पारंपरिक रूप में है। प्रच्छन्न रूप में हिंसा का साया प्रदर्शनी की कुछ दूसरी कृतियों में भी है।

शुरू में मैंने जिस पारंपरिक या लोक-छाप का जिक्र किया, उसे इन कृतियों की किनारी या हाशियों पर जगह-जगह देखा जा सकता है। लोककला में किनारी पर अक्सर बेल-बूटे अलंकृत रहते हैं; अर्पिता सिंह की कृतियों में वे फूल हो सकते हैं, फल, पशु और यहां तक कि कारें या सैनिक भी। शेखावटी की दीवारों की तरह उनकी कृतियों में भी जहाज, टैंक, दुपहिए या ऊंट आदि बहुधा खिलौनों की तरह प्रकट होते हैं। देखते-देखते इन खेल-खिलौनों के साथ वे अपनी शैली में कोई जीवन रच देती हैं। रेखाओं के लोकरूपों और अलंकारों के घेरे में अर्पिता जिस तरह यथार्थ को नंगा करती हैं, वह उनकी आधुनिकता का चरम रूप बनकर उभरता है। रास-रंग या किसी कामिनी के अलंकरण की बजाय वे अपने वक्त को घड़ी, पहियों और महानगरीय नक्शों जैसे प्रतीकों से होते हुए सीधे चाकू-तमंचों और सैनिकों-हथगोलों तक ले आती हैं।

ऐसा नहीं है कि उनमें अतीत का बोध नहीं है। मगर इतिहास और पुराण-कथाओं को वे चुपचाप वर्तमान से ला जोड़ती हैं। चाहे कहीं से शुरू हो, अर्पिता की नजर आसपास की दुनिया पर आकर टिकती है। आततायी वर्ग, आहत स्त्रियों और बच्चों पर। यह यथार्थ का कोरा चित्रांकन नहीं है, उसका सघन रूपायन है जो हमें यथार्थ के- दूसरे मायने में समय के- पार ले जाता है। यह अर्पिता सिंह की अपनी पहचान है- विशिष्ट और अनूठी। मुझे खयाल नहीं पड़ता कि हिंसा को इतने अहिंसक ढंग से कला में पहले किसी ने रूपायित किया होगा।

हिंसा के ताण्डव को अर्पिता अपनी कला भाषा में पूरी तीक्ष्णता के साथ बयान करती हैं- मगर रक्ताक्त लाल के इस्तेमाल के बगैर! वे काले, सफेद, भूरे और पीले रंगों का ज्यादा प्रयोग करती हैं। शरीर के रंग में

ढलता हुआ पीला अक्सर मटमैला हो जाता है। सफेद रंग 'सफेद कालर' वाली पीढ़ी को ढकने के लिए भी बरता गया है और उसे उघाड़ने के लिए भी। गुलाबी का इस्तेमाल रेखाओं के तनाव को ढीला और माहौल की भयावहता को मंद करता है।

सारे चेहरे यहां जरूर एक-से नजर आते हैं। भावशून्य। जैसे चेहरा न हो, नकाब हो। सब एक तरफ देखते हैं, एक दिशा में चलते हैं। एक-से पैरहन में, एक ही मुद्रा में। हिंसा के साथ नए दौर में पनपती व्यक्तित्वहीनता इन कलाकृतियों का दूसरा महत्त्वपूर्ण रूपक है। एक स्तर पर दोनों स्थितियां एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

तीन कृतियां भुलाए नहीं भूली जा सकतीं। 'सी-शोर' (सागर किनारे) में स्त्री-पुरुषों का समूह है। सागर तट पर जैसे सब तस्वीर उतरवाने के लिए किसी कैमरे को ताक रहे हों। आधे वस्त्रधारी, आधे निर्वस्त्र लोग। सारे उदास चेहरे। पेड़ों, फलों, गुलाबी गलीचे और गुलदस्तों के बावजूद। मोटी रेखाओं में नग्न मानव आकृतियों का अंकन यहां अपूर्व प्रयोग है। 'ईवनिंग वाक' (शाम की सैर) वकीलों की कदमताल- या भेड़चाल- है। लंबी ठुड्डी और चालाक आंखों वाले- एकरस चेहरे, एक साथ आगे बढ़ते हुए। 'वाचिंग' (पर्युत्सुक) बेहतरीन कलाकृति है। कतारबद्ध कुर्सियों पर हाथों पर हाथ धरे बैठे सूट-बूटधारी। सबकी एक भंगिमा, जैसे किसी फैसले पर नजरें गड़ाए उम्मीदजदा। या चमत्कार की आस लगाए बैठी निठल्ली बिरादरी। मुझे यह कृति देख बैकेट के छलिया 'गोदो' की याद हो आई। 'यू नीड टु बी मोर अलर्ट' (थोड़ी सजगता और) पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री की नियति पर टीका है, पृष्ठभूमि में रुकी हुई घड़ियों के असरदार प्रतीक से सज्जित।

बड़ी कृतियों के साथ प्रदर्शनी में दो खंड और हैं। एक को अर्पिता जी ने 'लघुकथा' नाम दिया है, दूसरे में स्याह रेखांकन हैं। आकार इन कृतियों के महत्त्व को कहीं कम नहीं करता है। 'लघुकथा' की कृतियां बड़ी कृतियों में चल रही धारा का विस्तार लगती हैं। इनकी संरचना जटिल नहीं है। महानगर, सड़कों के जाल, हिंसा, गरीबी, राशिफल, अर्थहीन इबारतें यहां भी हैं, लेकिन इक्की-दुक्की आकृतियों में। ये सभी कृतियां जलरंगों में हैं और रंगों की छटा इनमें खूब है।

अर्पिता सिंह की रेखाओं की ताकत देखनी हो तो स्याह रेखांकनों के हिस्से में जा पहुंचिए। रेखाओं में वेग और ठहराव के वहां कई प्रयोग हैं। आपको रंगों का अभाव नहीं खलता। न उस ओर ध्यान जाता है। इन कृतियों के प्रतीक मिलते-जुलते हैं, लेकिन उनमें कोई दास्तान या टीका नहीं है। बल्कि वेदना, एक तरह की टीस रेखांकनों में छाई दिखाई देती है। क्या यह अर्पिता जी के अस्पताल के दिनों की अभिव्यक्ति है? मालूम नहीं। मैंने हमेशा उन्हें सरल और स्निग्ध मुस्कान बांटते पाया है। पर एक बात जरूर कह सकता हूं: अगर आप भी इस बात में विश्वास रखते हों कि कला हमारे संवेदन को मांजती है, तो यकीन मानिए इन कृतियों से बाहर निकल आते वक्त आप अपनी धारणा को पहले से ज्यादा पुष्ट हुआ पाएंगे।

कैप्शन

अर्पिता सिंह की कलाकृति 'पर्युत्सुक'
अर्पिता सिंह: आधुनिकता में लोकरंग